REVIEW OF RESEARCH
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF) UGC APPROVED JOURNAL NO. 48514 ISSN: 2249-894X
VOLUME - 8 | ISSUE - 6 | MARCH - 2019

वाल्मीकीय रामायणकालीन शिक्षा प्रणाली : वर्तमान में उपादेयता

डॉ. चन्द्र प्रभा गंगवार

शोध सारांश

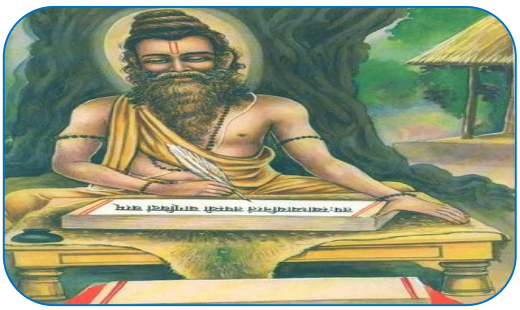

वाल्मीकीय रामायण भारतीय संस्कृति का साक्षात प्रतिबिम्ब है। रामायण से निःसृत भारतीय संस्कृति की कहानी आज भी एक आदर्श के रूप में सम्पूर्ण समाज के समक्ष उपस्थित है। वर्तमान समाज उसके आदर्श मार्ग से च्युत होकर दिग्भ्रमित तो गया है, परन्तु उससे ऊँचा आदर्श खड़ा नहीं कर पाया। रामायण में न केवल धर्म, स्मृति, इतिहास, काव्यकला है, वरन् ये तत्कालीन समाज की शिक्षा, धर्म, दण्ड, कानून, परम्पराओं, संस्थाओं का भी प्रतिबिम्ब है। रामायण में वर्णित शिक्षा पद्धति गुरू शिष्य परम्परा, शिक्षा, शिक्षण का अत्यन्त सूक्ष्म चिन्तन करती दृष्टिगोचर होती है। तत्कालीन शिक्षण संस्थायें पाठ्यक्रम, शिक्षणपद्धति व स्त्रीशिक्षा की व्यवस्था आज भी एक हमारे समाज के लिए आदर्श है। नैतिक मूल्यपरक शिक्षा पद्धति एक प्रकाशपुंज हैं, जो हमारी नयी उच्च शिक्षानीति के लिए एक अमृतद्रव्य हो सकती है। इसकी उपादेयता को प्रकट करना ही मेरे शोध पत्र का उद्देश्य है।

प्राचीन काल से ही भारत विश्व में शिक्षा के केन्द्र के रूप स्थापित था। सम्पूर्ण विश्व को अपने उच्च ज्ञान ज्योति से दैदीप्यमान करता रहा है। समय–समय पर अनेक विद्वान विदेशों से आये और उच्च ज्ञान व शिक्षा अर्जित कर अपने को गौरान्वित करते रहें है। 'विश्व गुरू' के रूप में ख्याति प्राप्त भारत में तक्षशिला व नालन्दा जैसे विश्वविद्यालय शिक्षा तत्कालीन पद्धति का चरमोत्कर्ष थे। यदि हम भारतीय समाज व धर्म के आदर्श रामायण की बात करें तो हम देखते हैं, कि तत्कालीन समाज में विद्या अध्ययन पर ब्राह्मणों का एकाधिकार नहीं था, बल्कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र सभी शिक्षा प्राप्त करने के अधिकारी थे। सभी को प्रारम्भिक, बौद्धिक व धार्मिक शिक्षा समान रूप से मिलती थी। राजा दशरथ के राज्य में ऐसा कोई भी नास्तिक, असत्यवादी, नाना शास्त्रों से अनभिज्ञ अथवा अविद्वान नहीं था।[2] इससे स्पष्ट है कि तत्कालिक समाज पर्याप्त रूप से शिक्षित व सभ्य था।

रामायण कालीन शिक्षा प्रणाली का विश्लेषण निम्नांकित बिन्दुओं के अन्तर्गत किया जा सकता है–

शिक्षा का उद्देश्य :

रामायणकालीन शिक्षा पद्धति का यदि हम विश्लेषण करें तो स्पष्ट होता है कि उस समय जिस प्रकार की शिक्षा प्रदान की जाती थी, उसका उद्देश्य व्यक्ति को सामाजिक दृष्टि से सभ्य, सुसंस्कृत व सुशिक्षित बनाना था। साथ ही व्यक्ति को व्यायाम, मृगया, युद्ध शिक्षण के द्वारा सुगठित, शक्तिशाली एवं हृष्ट–पुष्ट आरोग्य देह सम्पन्न बनाना भी था। तत्कालीन शिक्षा का उद्देश्य विद्या के द्वारा 'विनीत' बनाना था। 'विनय' का

अर्थ है 'आत्मसंयम'। विनय निश्चय ही मनुष्य के चरित्र का सर्वश्रेष्ठ धन है। इसके अभाव में शिक्षित व्यक्ति भी मूर्ख ही है। राम का परिचय देते हुये हनुमान कहते हैं– ''रामा विद्याविनीतश्च''[3] अर्थात् विद्या अध्ययन के कारण पूर्णतया विनीत है। आश्रमव्यवस्था में विद्यार्थी को स्वच्छता, शिष्टाचार, विनम्रता, सौहार्दता, सुशीलता की शिक्षा दी जाती है। वह सच्चे अर्थो में एक सभ्य अनुशासित नागरिक बनने के लिए अपने को तैयार करता था। जिनमें ये गुण नहीं होते थे, उनकी शिक्षा निरर्थक थी और शिक्षा का उनके लिए कोई अर्थ न था। यदि हम वर्तमान समय की शिक्षा के उद्देश्य के विषय में देखे तो पाते हैं कि वर्तमान में शिक्षा पद्धति व शिक्षा व्यवस्था अपने उद्देश्य से भ्रमित हो चुकी है। दिशाहीन, दिशा शून्य शिक्षा प्रणाली दिशाहीन युवा वर्ग का निर्माण कर रही है। जो न तो शारीरिक और न ही बौद्धिक स्तर पर बलिष्ठ व सुगठित है।

शिक्षण संस्थाएँ

आश्रम व आचार्य सदन– तत्कालीन समाज में ऋषि मुनियों के आश्रम ही शिक्षा के केन्द्र थे। रामायण युग मुख्यतः आश्रम युग था। आश्रमों में ही मुनिगण अपनी पत्नी व सन्तान सहित निवास करते थे। और विभिन्न स्थानों से आये विद्यार्थी इन्हीं मुनियों के सानिध्य में रहकर शिक्षा प्राप्त करते थे। भारद्वाज ऋषि का आश्रम, वाल्मीकि का आश्रम शिक्षा के प्रसिद्ध केन्द्र थे। ऋषि भारद्वाज के आश्रम में सायंकाल तथा कभी–कभी तो रात्रि पर्यन्त ज्ञानमयी कथाएं व शास्त्रार्थ चला करते थे।[4] वाल्मीकि आश्रम का उल्लेख रामायण में दो स्थानों पर प्राप्त होता है।[5] वाल्मीकि के आश्रम में अन्य विद्याओं के साथ ललित कलाओं की भी शिक्षा दी जाती थी। जैसा कि कुश एवं लव की शिक्षा–दीक्षा के माध्यम से प्रकट होता है। ऋषि ने उन्हें रामायण के पदों का वीणा के मधुर स्वर एवं लय के साथ गान की शिक्षा दी थी।

इन ऋषियों के आश्रम के अतिरिक्त राजधानी अयोध्या में कुछ अन्य शिक्षा के केन्द्र भी स्थापित थे, जिन्हे आचार्य सदन कहा जाता था। वहाँ विविध विषयों से सम्बन्धित शिक्षा दी जाती थी। रामायण में इसका संकेत मिलता है कि रामादि राजकुमारों के सैन्य शिक्षक का आश्रम अयोध्या के ही निकट कहीं स्थित था। जिनके सदन में राम–लक्ष्मण के धनुष, तरकस, खड्ग, कवच आदि रखे हुये थे। उनके आचार्य संभवतः उपाध्याय सुधन्वा थे जो वाणादि अस्त्रों के प्रयोग में विचक्षण व अर्थशास्त्र के ज्ञाता थे।[6]

अयोध्या में ही रघुवंश कुलपुरोहित ऋषि वशिष्ठ का भी विद्यालय था। इस विद्यालय का संचालन वशिष्ठ पुत्र सुयज्ञ करते थे। वनप्रस्थान करते समय श्री राम उन्हे दान देने के लिए बुलवाते हैं और बहुमूल्य वस्तुयें दान में देते हैं। सीता उनकी पत्नी के लिए दान देती हैं।''[7]

अयोध्या में तैत्तिरीयों का भी एक विद्यालय था जहाँ अनेक ब्राह्मण तैत्तिरीय शाखा का अध्ययन करते थे। इस विद्यालय के आचार्य 'अभिरूप' नामक ऋषि थे।[8] कभी–कभी विद्यार्थी उच्च शिक्षा प्राप्त करने को एक विद्यालय से दूसरे विद्यालय भी जाते थे।[9] विश्वामित्र पहले अंगराज्य के समीप कौशिकी नदी के समीप आश्रम में वास करते थे, पुनः कर्मकांड सम्पादन हेतु दक्षिण–पश्चिम में स्थित सिद्धाश्रम में चले जाते हैं। श्री राम भी पहले सुधन्वा, पुनः विश्वामित्र और तत्पश्चात, अगस्त ऋषि से शिक्षा प्राप्त करते हैं।[10] इससे ज्ञात होता है कि उस समय भी बालकों के लिए प्राथमिक, माध्यमिक व उच्च शिक्षा की पृथक–पृथक व्यवस्था थी।

आश्रमों व विद्यालयों के अतिरिक्त रामायणकालीन समाज में राजाओं द्वारा बड़े–बड़े यज्ञ व शैक्षिक समारोह आयोजित किये जाते थे। ये गंभीर ज्ञान विमर्श, शास्त्रार्थ व शिक्षा के प्रसार में मुख्य भूमिका निभाते थे। वर्तमान समय में आयोजित होने वाले शिक्षा सम्मेलन व सेमीनार इन समारोहों का ही एक विकृत रूप है। पहले जहाँ इन समारोहों में एक धार्मिक कर्मकाण्ड के साथ ही विभिन्न विद्वान, ऋषि, आचार्य विविध विषयों पर वाद–विवाद के द्वारा अपने ज्ञान को पुष्ट करते थे। उनका यह वाद–विवाद विद्यार्थियों के लिये शिक्षाप्रद होता था। दशरथ के अश्वमेघ यज्ञ में विविध क्षेत्रों से अनेक ज्ञानी एवं विद्वान उपस्थित होते हैं।[11] उत्तरकाण्ड में श्रीराम द्वारा आयोजित अश्वमेघ यज्ञ भी एक विशाल शैक्षिक समारोह ही था। विद्यार्थी अपने आचार्यो के साथ शैक्षिक भ्रमण भी करते थे शैक्षिक भ्रमण करने से वे दूसरे आचार्यो व विद्वानों के सम्पर्क में आते थे और उनके विचारों व उपदेशों द्वारा लाभान्वित होते थे।

गुरू–शिष्य परम्परा–

रामायणकाल में वैदिक काल के ही समान ब्रह्मचर्य की अवधि में विद्याध्ययन किया जाता था। विद्यार्थी आश्रम में रहते हुये गुरू का प्रत्येक कार्य करते हुये विद्याभ्यास व आश्रम की व्यवस्था व कठोर अनुशासनपूर्ण वातावरण में शिक्षा ग्रहण करते थे। विद्यार्थी जीवन कठोर व अनुशासित था। गुरू की सेवा शुश्रुषा व उनके व्यक्तिगत कार्यो को करना 'गुरून्कार्य' कहलाता था। आश्रम की पूर्ण रूप से सफाई करना, झाड़ू लगाना,[12] वन से फल–पुष्प आदि का लाना[14] तथा भिक्षा द्वारा अन्न संग्रह करना[15] विद्यार्थियों की दैनिक दिनचर्या थी। श्रीराम लक्ष्मण स्वयं आश्रम में 'गुरून्कार्य' करते थे।

वर्तमान समय में विद्यालय मात्र उपाधि वितरण केन्द्र बनकर रह गये हैं। विद्यार्थी शिक्षक के नाम से भी अपरिचित ही रहकर शिक्षा पूर्ण कर जाते हैं। तो ऐसे शैक्षिक व्यवस्था में नैतिक मूल्यों के विकास की कल्पना व्यर्थ है। जहाँ रामायण में श्री राम लक्ष्मण राजपुत्र होने के बाद भी 'गुरून्कार्य' व आश्रम की सफाई करने में स्वयं को धन्य समझते थे वहीं वर्तमान में यदि शिक्षक छात्र से पानी भी मंगा के पीले तो समस्त मानवाधिकार आयोग, बाल विकास आयोग, अभिभवाक संघ, मीडिया उसे बाल शोषण का राष्ट्रीय स्तर का मुद्दा बना देगें। और हम ऐसी शिक्षा व्यवस्था में सपना देखते हैं अपने बालक को राम बनाने का।

रामायण कालीन समाज में गुरू का अत्यन्त सम्मान पूर्ण स्थान था। माता–पिता व ज्येष्ठ भ्राता के रूप में गुरू की गणना शिष्य के पितरों के रूप में की जाती थी। वशिष्ठ ने आचार्य को माता–पिता से भी श्रेष्ठ स्थान दिया है क्योंकि वह शिष्य को प्रज्ञा प्रदान करता है।[15]

रामायण में 'गुरू' शब्द शिक्षक का द्योतक है जो अपने आश्रम में निवास करने वाले शिष्यों को उनकी योग्यतानुसार शास्त्राध्ययन कराता था। गुरू अपने शिष्य से पिता–पुत्र का सम्बन्ध रखता था। वाल्मीकि जी ने वशिष्ठ के माध्यम से गुरू की परिभाषा दी है। वशिष्ठ राम से कहते है– प्रज्ञा ददाति चाचार्यस्तास्मात्सगुरूरूच्यते''[16] हे राघव! पिता पुत्र को जन्म देता है और शिक्षक उसे ज्ञान, प्रज्ञा देता है, इसी कारण वह गुरू कहलाता है। मैं तुम्हारा और तुम्हारे पिता का भी गुरू हूँ। मेरी बात पर चलोंगें तो पथ से कभी भ्रष्ट नहीं होगे।'' गुरू के लिए आचार्य शब्द का भी प्रयोग किया गया है। रामायण में उच्च कोटि के शिक्षक के लिए आचार्य शब्द का प्रयोग है। आचार्य वह है जो छात्र का उपनयन कराता है और वेद की शिक्षा देता है।[17]

रामायण में 'कुलपति' का भी उल्लेख प्राप्त होता है। जो आश्रम का स्वामी होता था, वह कुलपति कहलाता था। चित्रकूट के तपोवन में राम एक कुलपति से मिलते हैं, जिनके अधीन सहस्रो शिष्य विद्याध्ययन करते थे।[18] इसके अतिरिक्त रामायण में श्रोत्रिय, तापस, ब्रह्मवादी, शिक्षक, परिब्राजक शब्दों का प्रयोग भी शिक्षा प्रदान करने वाले शिक्षकों के लिये किया गया है। यह सभी अलग–अलग तरह की विशेष शिक्षा विद्यार्थियों को प्रदान करते थे।

पाठ्यक्रम एवं शिक्षण पद्धति–

रामायणकालीन शिक्षा पाठ्यक्रम को हम चार भागों में बांट सकते है। (1) शारीरिक शिक्षा (2) बौद्धिक शिक्षा (3) व्यावहारिक शिक्षा (4) नैतिक शिक्षा।

शारीरिक शिक्षा के अन्तर्गत व्यायाम, मृगया युद्धशिक्षा थी। व्यायाम के द्वारा विद्यार्थी के शरीर को हृष्ट–पुष्ट और सुगठित किया जाता था। जिससे वह कर्म क्षेत्र में सफल हो सके। विद्यार्थियों को शस्त्र शिक्षा पाणिलाघव (अस्त्र प्रशिक्षण) हाथी, घोड़ो की सवारी व नियन्त्रण प्रशिक्षण, रथ नियन्त्रण प्रशिक्षण भी दिया जाता था।

बौद्धिक शिक्षा के अन्तर्गत विद्यार्थियों को वेदों, आख्यान, आन्वीक्षिकी (तार्किक विद्या) आगम (वेद से पृथक् शास्त्र), कला (नृत्य, संगीत, वादन, चित्रकला), राजविद्या (राजनीति) इत्यादि विषयों की शिक्षा व प्रशिक्षण दिया जाता था। बौद्धिक शिक्षा विद्यार्थी रूचि व वर्ण के अनुसार ग्रहण करते थे। श्री राम भाईयों सहित चारों वेदों का ज्ञान राजविद्या, अस्त्र–शस्त्र का प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं।

व्यावहारिक शिक्षा के अन्तर्गत विद्यार्थी को आचारव्यवहार, आतिथ्य, सद्व्यवहार गुरू के साथ विनम्रता, समाज व सम्बन्धियों के साथ शिष्टाचार इत्यादि का ज्ञान कराया जाता था। राम–लक्ष्मण को व्यावहारिक शिक्षा का पूर्ण अनुभव था। व्यावहारिक शिक्षा के साथ नैतिक शिक्षा भी पाठ्यक्रम का महत्वपूर्ण हिस्सा थी। इसका उद्देश्य बालकों का नैतिक उत्थान करना था। नैतिक शिक्षा के अन्तर्गत विद्यार्थियों को सत्य, कर्त्तव्यनिष्ठा,

शारीरिक स्वच्छता, इन्द्रिय निग्रह आदि उदात्त गुणों की शिक्षा दी जाती थी। नैतिक शिक्षा केवल शिक्षण संस्थाओं में ही नहीं बल्कि घर पर माता–पिता के द्वारा भी समय–समय पर दी जाती थी।

रामायण में तत्कालीन समाज में प्रचलित अनेक उद्योग धन्धों का भी उल्लेख प्राप्त होता है। विभिन्न प्रकार के उद्योग धन्धों के प्रचार से प्रतीत होता है कि विद्यार्थियों को उद्योग–धन्धों का प्रशिक्षण भी दिया जाता था, तथा इच्छुक व योग्य विद्यार्थियों को आयुर्वेद, जड़ी–बूटियों व औषधियों की शिक्षा प्रदान की जाती थी। इसके साथ ही रामायण में 'बला–अतिबला' दो रहस्यमयी विद्याओं का भी उल्लेख प्राप्त होता है। यह विद्यायें योग्य व सुपात्र को ही दी जाती थी। ऋषि विश्वामित्र ने श्रीराम को 'बला–अति बला' दो विद्यायें सिखायी थी। इनसे वे पारलौकिक शक्तियों के ज्ञाता हो गये थे।[19]

रामायण कालीन समाज में शिक्षा मुख्यतः मौखिक रूप से ही प्रदान की जाती थी। यद्यपि लेखन पद्धति का भी अविष्कार हो चुका था। शिक्षा मौखिक परम्परा से ही दी जाती थी, जिससे छात्र कंठस्थ कर लेता था। इसके साथ ही शिक्षण कथा पद्धति के द्वारा दिया जाता था। गुरू शिष्यों को कथा व आख्यान के माध्यम से शिक्षा प्रदान करता था। ये कथायें उच्च कोटि के ऋषि मुनियों, देवी–देवताओं के उदात्त चरित्र से सम्बन्धित होती थी। जिससे बालकों का चारित्रिक व नैतिक विकास भी होता था।

रामायण में स्त्री शिक्षा से सम्बन्धित उल्लेख भी प्राप्त होता है। कन्याओं के लिए यद्यपि विवाह अनिवार्य ही था, परन्तु विवाह से पूर्व वे पर्याप्त शिक्षा प्राप्त करती थी। 12 वर्ष तक उनकी शिक्षा समाप्त हो जाती थी। कुछ कन्यायें ऐसी होती थी जो ब्रह्मचर्य का पालन करके उच्च शिक्षा प्राप्त करती थीं, और विद्याध्ययन करती थी। ऐसी स्त्रियों की संख्या, अत्यन्त न्यून थी। इसलिए प्रथम श्रेणी की कन्यायें जो बारह वर्ष तक शिक्षा प्राप्त करती थी 'सद्योवधू' तथा दूसरी श्रेणी की कन्यायें जो शास्त्राध्ययन करती थी 'ब्रह्मवादिनी' कहलाती थी। 'ब्रह्मवादिनी' कन्यायें आजीवन अविवाहित रहती थी। मेरूसावर्णि ऋषि की पुत्री स्वयं प्रभा, वेदवती, अहल्या व शबर जाति की तपस्विनी शबरी भी तपस्विनी व उच्च शिक्षित स्त्रियों के उदाहरण है। सीता ने भी विवाह से पूर्व शिक्षा प्राप्त की थी, तभी वे राम नाम अंकित अगूँठी पढ़ लेती हैं। सीता विवाह के पश्चात् अपनी श्वश्रूजनों से, वनवास के समय श्रीराम से व परित्याग के पश्चात् वाल्मीकि जी से पर्याप्त ज्ञान व व्यवहार ज्ञान की शिक्षा प्राप्त करती है। तत्कालीन समाज में स्त्रियाँ पिता के सानिध्य में रहकर आश्रम में तथा घर पर भी शिक्षा ग्रहण करती थीं।

इस प्रकार रामायण में जिस शिक्षा प्रणाली को चित्र हमारे समक्ष उपस्थित होता है, वह एक आदर्श शिक्षा व्यवस्था का रूप है। सर्वप्रथम हम देखते हैं कि उस समय ब्रह्मचर्य आश्रम में 25 वर्ष पर्यन्त विद्यार्थियों को आश्रम में रखा जाता था। शिक्षा के तीन स्तर थे–प्राथमिक, माध्यमिक व उच्च शिक्षा। प्राथमिक स्तर पर सभी को समान रूप से शारीरिक, नैतिक व व्यावहारिक शिक्षा दी जाती थी। माध्यमिक स्तर पर बौद्धिक विकास व वर्णानुसार शिक्षा प्रदान की जाती थी। उच्च शिक्षा में केवल इच्छुक व शास्त्रों का गहन–चिन्तन, मनन करने वाले विद्यार्थी ही प्रवेश लेते थे। शिक्षण संस्थायें कुलपति के नेतृत्व में आदर्श वातावरण में शिक्षा प्रदान करती थी। अनुशासन व चारित्रिक विकास ही शिक्षा का प्रमुख स्तम्भ थे। अब हम शिक्षा का उद्देश्य केवल, नौकरी प्राप्त करने के रूप में देखते हैं। वर्तमान समय में शिक्षा प्रणाली अपने उद्देश्य से ही भ्रमित हो गयी है। सर्वप्रथम तो हमे अपनी उच्च शिक्षा का उद्देश्य निर्धारित करना होगा और माध्यमिक स्तर पर ही विद्यार्थी को स्वरोजगार व उसके कौशल विकास को सही दिशा में आगे बढ़ाना होगा। उच्च शिक्षा में केवल इच्छुक व अन्वेषित प्रवृत्ति वाले विद्यार्थियों को ही प्रवेश दिया जाना चाहिए। नयी शिक्षा नीति में प्रत्येक स्तर पर नैतिक शिक्षा को अनिवार्य रूप से शामिल कर विद्यार्थियों के चारित्रिक विकास को प्राथमिकता पर रखना होगा। समाज में फैला चारित्रिक पतन नैतिक व व्यवहारिक शिक्षा की न्यूनता का परिणाम है। रामायणकालीन शिक्षा पद्धति निश्चय ही वर्तमान समय में भी उपादेय है। आज जब हम नयी उच्च शिक्षा नीति पर चिन्तन–मनन कर रहे हैं। तब यदि रामायण में वर्णित शिक्षा प्रणाली को दृष्टि में रखा जाये तो निश्चय ही समाज को दिशा प्रदान करने वाली शिक्षा नीति का निर्माण करने में सफलता प्राप्त होगी।

संदर्भ संकेत

1. असिसेन्ट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बीसलपुर, पीलीभीत, उ.प्र.।
2. नासूयको न चाशक्तो ना विद्वान विद्यते तदा। 1/6/14
3. वा०रा० 1/7/6
4. वा०रा० 2/48/32
5. वा०रा० 2/54/27–32
6. सुधन्वानमुपाध्यायं कच्चित्वं तत मन्यसे।। वा०रा० 2/85/14
7. वा०रा० 2/29/1–10
8. आचार्य स्तैति रीयाणामभिरूपश्च वेदवित्।। वा०रा० 2/29/13,14
9. वा०रा० 1/33/12
10. वा०रा० 2/94/8, 1/26/8, 3/12/32–6, 6
11. वा०रा० 1/13/16
12. गुरूकार्याणि सर्वाणि नियुज्य..... वा०रा० 1/21/19
13. वा०रा० 1/10/49
14. वा०रा० 3/114,5
15. वा०रा० 2/173/3
16. वा०रा० 2/103/3
17. मनुस्मृति 2/140, 171
18. कृतां जलिरून्वायेद्मृषिं कुलपति ततः। 2/108/4
19. वा०रा० 1/12/11